चतुर्थ अध्याय

'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रित जीवन-दर्शन : सामाजिक पक्ष

समाज का अर्थ, महत्त्व, सामाजिक समस्याएँ,
प्रेम संबंधी विश्लेषण, तत्कालीन सामाजिक स्थिति,
नारी समस्या, विधवा समस्या, आर्थिक समस्या।

चतुर्थ अध्याय

चित्रलेखा उपन्यास में चित्रित जीवन दर्शन : सामाजिक पक्ष

लेखक भगवतीचरण वर्माजी के अनेक उपन्यासों में सामाजिक पक्ष देखने को मिलता है। उन्होंने अनेक सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। सामजिक याने समाज से संबंधित, समाज का ही यथार्थ वर्णन, समाज के ही प्रश्न-समस्याओं का यथार्थ वर्णन होता है।

वर्माजी समाज की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि 'समाज मनुष्य की समष्टि का दूसरा नाम है।' यही दूसरे शब्दों में डॉ. अमरसिंह लोधा बताते हैं कि - 'व्यक्तियों के समुदाय का नाम ही समष्टि या समाज है' [1] अर्थात व्यक्ति ही समाज के केंद्र में है। समाज को व्यक्ति से अलग देखना-परखना भ्रांति मात्र है। यह सच है कि समाज के नियम व्यक्ति के नियमों से भिन्न हो सकते हैं। कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत नियमों को समाज-सापेक्ष रखकर ही समाज की इकाई बन सकता है और संसार में सुखपूर्वक जी सकता है अन्यथा सामाजिक नियमों से परे व्यक्ति स्वेच्छाचारी व समाजविहीन हो जाएगा। व्यक्ति के धर्म समाज के धर्म नहीं हो सकते, किंतु समाज के धर्म व्यक्ति के धर्म हो सकते हैं, होते हैं और होने चाहिए। सामाजिक धर्मों का अतिक्रमण व्यक्ति नहीं कर सकता और न करना चाहिए। फिर समाज से विच्छिन्न होकर व्यक्ति जी भी नहीं सकता। यही कारण है कि मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा गया है। समाज के बारे में वर्माजी के विचार 'चित्रलेखा' में मिलते हैं। बीजगुप्त नर्तकी चित्रलेखा से कहता है - 'व्यक्ति से ही समुदाय बनता है, समुदाय की प्यास उसके प्रत्येक व्यक्ति की प्यास है, फिर यह भेद क्यों?' [2] समाज में रहकर ही व्यक्ति सुखी, समृद्ध प्रगतिशील और महान बन सकता है। समाज से दूर रहनेवाले व्यक्तियों में या तो विक्षिप्त वर्ग के लोग आते हैं या निर्जन बनवासी साधु-संन्यासी या यतिगण आते हैं। इसका यथार्थ उदाहरण वर्माजी का 'चित्रलेखा' उपन्यास है उसमें योगी के रूप में कुमारगिरि का चरित्रांकन किया गया है। वे बिल्कुल समाज से दूर एक कुटी में रहते हैं। वे संन्यासी हैं। ऐसे लोग समाज निरपेक्ष रहनेवाले और अंतर्मुखी व्यक्तित्ववाले होते हैं।

सभी कलाओं का केंद्र मानव जीवन है। साहित्य के लिए भी यह मान्यता पूर्णतः सत्य है। साहित्य मानव संस्कृति का एक अविभाज्य अंग है। अतः साहित्य भी व्यक्ति की तरह समाज का अविभाज्य अंग है। इससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य समाज का परस्पर संबंध है। इसी कारण साहित्य को समाज का दर्पण या प्रतिबिंब कहा गया है। समाज के उत्थान-पतन में साहित्य का अत्यधिक योगदान रहता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति, समाज और साहित्य इनका आपस में घनिष्ठ संबंध है। 'चित्रलेखा' में बीजगुप्त नामक पात्र व्यक्ति को महत्व देते हुए कहता है - 'व्यक्तित्व जीवन में प्रधान है और व्यक्ति से ही समुदाय बनता है। जब व्यक्ति वर्जित है, तो उस व्यक्ति को समुदाय का भाग बनना अपना ही अपमान करना है।' [3] इसप्रकार यहाँ पर वर्माजी समाज के बारे में अपना मत बीजगुप्त के माध्यम से बता देते हैं।

मनुष्य की कामनाएँ अनंत हैं। इन कामनाओं को पूर्ण करने के लिए मनुष्य को दो प्रकार की बाधाओं से संघर्ष करना पड़ता है। प्रथम प्रकार की बाधाएँ प्राकृतिक हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों की असुविधाओं को दूर करने के लिए मनुष्य ने सभ्यता का विकास किया है। द्वितीय प्रकार की बाधाएँ सामाजिक हैं। सामाजिक

बाधाओं को कम करने के लिए मनुष्य ने संस्कृति का विकास किया है। संस्कृति ही पशु और मनुष्य के बीच का भेदक तत्व है। सांस्कृतिक संपन्नता के अभाव में सभ्यता का वैभव मौत का घाट बन कर रह जाता है। इसका मतलब यह है कि व्यक्ति और समाज का जिस प्रकार संबंध है, इसी प्रकार संस्कृति का भी इनसे आपस में संबंध है। समाज के विकास में संस्कृति की सहायता होती है। बड़े-बड़े विचारक कर्म और अकर्म, पुण्य और पाप का निर्धारण करते समय चक्कर में पड़ जाते हैं। यदि यह कहा जाए कि सज्जनों को पाप-पुण्य का निर्धारण करते समय अंतःकरण को प्रमाण मानना चाहिए, तो वह भी ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अंतःकरण या अंतरात्मा समाज द्वारा निर्मित होती है। महामंत्री चाणक्य ने 'चित्रलेखा' में इसे भली-भाँति विशद किया है। इसी कामनाओं की पूर्ति से संबंधित पाप-पुण्य विषयक समस्या को 'चित्रलेखा' में स्पष्ट करने का प्रयत्न श्री भगवतीचरण वर्मा ने किया है। मनुष्य जीवन में कामनाएँ अनंत हैं। इन कामनाओं को सहज ही दो मार्गों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ कामनाएँ अस्तित्वरक्षा से संबंधित हैं। तथा कुछ सुरक्षा के बाद जीवन भोग से संबंधित। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें आनंद की साधनावस्था और आनंद की सिद्धावस्था की कामनाएँ माना है। 'चित्रलेखा' उपन्यास में केवल आनंद की सिद्धावस्था के काम संबंधों पर ही पापपुण्य की दृष्टि से विचार किया गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि पापपुण्य का एकमेव क्षेत्र काम संबंधी ही है। इसलिए काम के संबंध में प्राचीन काल से ही यह धारणा रही है कि जिस प्यास को बुझाया नहीं जा सकता, उसे बुझाने के प्रयत्न में जीवन को क्यों बरबाद किया जाए। क्यों न, सच्चे परलोक सुख को पाने के लिए साधना की जाए। 'चित्रलेखा' का योगी कुमारगिरि इसी मत का समर्थक है। उसकी दृष्टि में 'वासना पाप है', क्योंकि वासना के कारण ही मनुष्य पाप करता है। 'वासना के होते हुए ममत्व प्रधान रहता है।' [4] और ममत्व के भ्रांतिकारक आवरण के रहते हुए आनंद का पाना असंभव है। कुमारगिरि को यह भी पता है कि 'इच्छाओं को दबाना उचित नहीं', किंतु उसकी यह धारण है कि इच्छाओं को निर्मूल कर देने के बाद इच्छाओं को दबाने का प्रश्न ही नहीं उठता। वह वासना के स्थान पर साधना का उपासक है। उसकी दृष्टि में 'जीवन की उत्कृष्टता वासना से युद्ध करने में है।'

वर्माजी ने 'चित्रलेखा' उपन्यास लिखते समय भूमिका में लिखा है कि 'चित्रलेखा' में एक समस्या है। मानव जीवन को तथा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण हैं। [5] इसमें वर्माजी ने हमारे समाज में स्थापित नैतिक मूल्यों को चुनौती देकर उनका पुनर्मूल्यांकन करना चाहा है। इसकी मुख्य समस्या पाप-पुण्य की है। हमारे समाज में परंपरा से स्थापित पाप-पुण्य की नैतिक भावना पर लेखक ने व्यक्तिवादी एकांगी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है और उसे वस्तुतः केवल विभिन्न व्यक्तियों के दृष्टिकोणों की विषमता बताई है।

वर्माजी कहते हैं कि 'समाज की परिधि बड़ी विस्तृत एवं व्यापक होती है। मानव-जीवन के विभिन्न पहलु - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी समाज के अंतर्गत ही आते हैं। इनकी पूर्ति समाज में रहकर की जा सकती है। उनकी अनंत साधना का क्षेत्र समाज है।' [6] इसीप्रकार 'चित्रलेखा' उपन्यास में वर्माजी भोगी और योगी प्रतीकों द्वारा यह स्पष्ट कर देते हैं कि 'समाज में पाप-पुण्य कुछ भी नहीं है वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।' [7]

बीसवीं सदी के चौथे दशक में इस उपन्यास की रचना वर्माजी ने की है, उस काल के संदर्भ में अध्ययन करने से कृति की महत्ता से संबंधित बहुत सारी बातें हमारे सामने प्रकट होती हैं। वर्माजी का 'चित्रलेखा' उपन्यास समस्या प्रधान उपन्यास है। उन्होंने इस उपन्यास में पाप-पुण्य की समस्या याने पाप-पुण्य किसे कहते हैं? उसका स्थान कहाँ पर है? इसी को उजागर किया है। इसमें पाप-पुण्य की समस्या से जुड़े अनेक वे महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी हैं जो इस उपन्यास में बार-बार उठाए गए हैं। विवाह, धर्म, प्रेम, ईश्वर, व्यक्ति, परिस्थिति आदि संदर्भों को जगह-जगह ज्वलंत प्रश्नों के रूप में सामने रखा है।

लेखक वर्माजी ने वर्तमान कालीन सामाजिक प्रश्नों की खोज के लिए अतीत का थोडा वर्णन किया है। जिसे उपन्यास में आए विभिन्न नामों, चित्रों, पदों, व्यवसायों के उल्लेख तथा विशेष रूप से भाषिक प्रयोग इनसे इतिहास का भ्रममात्र तैयार किया गया है। इतिहास प्रसिद्ध कुछ व्यक्तियों सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य, चाणक्य, सामंत आदि के अतिरिक्त सभी पात्र काल्पनिक माने जाते हैं।

उपन्यास जब लिखा गया उस समय समाज की स्थिति कुछ इस प्रकार की थी। रूढ़ी, परंपरा, रीतिरिवाज, तथा धर्म के नाम पर अनेक बुराइयाँ समाज में घर कर गई थीं। शताब्दियों से समाज में नारी उपेक्षित रही है। वह पिता, पति तथा पुत्र के संरक्षण में पलती रही। समाज में वर्ण व्यवस्था थी। समाज में बहुदेववाद प्रथा थी। इसी कारण पंडे-पुरोहित वर्ग का आर्थिक लाभ दिन-ब-दिन बढ़ता ही गया। रूढ़ियों के कारण उस समय सामाजिक परिवर्तन न हो सका। इसी समय 1934 में वर्माजी ने समस्याप्रधान 'चित्रलेखा' उपन्यास की निर्मिति की है। विधवा-विवाह निषेध से करोड़ों युवतियों को अप्राकृतिक आत्म-नियंत्रण के लिए बाध्य कर दिया गया। यदि इस अग्नि-परीक्षा में वे खरी न उतर सकीं और प्रवृत्ति-प्रेरणा से उनका पैर कहीं डगमगा गया तो उनके जीवन की विषमता और भी बढ़ जाती है, और उनके सामने वेश्या-वृत्ति अथवा आत्महत्या के अतिरिक्त कोई तीसरा मार्ग नहीं रह जाता। इसी प्रकार 'चित्रलेखा' उपन्यास की नायिका चित्रलेखा को विधवा समस्या का इसी प्रकार सामना करना पड़ा है।

स्वयं म. गांधीजी ने भी नारी के महत्व को जाना है। किसी भी समाज की स्थिति नारी पर निर्भर करती है। इस प्रकार नारी समाज की उन्नति-अवनति की निर्माती है। गांधीजी ने इसी उपेक्षित-वर्ग को समानाधिकार एवं सम्मान दिलाने का प्रयत्न किया। इसी काल में गांधीजी ने विधवा-विवाह का समर्थन बड़े जोरों से किया। वर्माजी का युग विभिन्न संस्कृतियों-सभ्यताओं के संयम और समन्वय का रहा है।

वर्माजी के अनुसार व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक संगठनों में योग देना उसका कर्तव्य है। विवाह न करके वह कर्तव्य से विमुख होकर अराजकता को प्रश्रय देता है। 'स्त्री अबला है। प्रत्येक पुरुष का यह कर्तव्य है कि वह एक अबला को आश्रय दे। विवाह द्वारा ही पुरुष अबला स्त्री को आश्रय देता है। यदि पुरुष स्त्री को आश्रय न दे, तो स्त्री की दशा शोचनीय हो जाए। इधर पुरुष के सामने भी काफी कठिनाइयाँ आती हैं। जिस समय तुम विवाह न करके संन्यासी होने की बात सोचते हो, तुम कायरता करते हो। एक अबला को आश्रय देने का जो तुम्हारा कर्तव्य है, उससे तुम विमुख होते हो।' [8] विवाह के संबंध में नारी की पराधीनता का इससे अधिक प्रामाणिक विवरण और क्या हो सकता है?

वर्माजी कहानीकार तथा उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। उसी प्रकार वह समस्यामूलक उपन्यासकार भी हैं। उनका इस प्रकार के उपन्यास लिखने के पीछे उद्देश्य यही है कि सिर्फ मनोवैज्ञानिक आधार पर पात्रों का चित्रण करना नहीं, बल्कि समाज की पृष्ठभूमि में उनके निराले व्यक्तित्व का परिचय देना है। उसी प्रकार वर्माजी व्यक्तिवादी साहित्यकार के रूप में भी उजागर हुए हैं। उनके साहित्य को देखते हैं, तो उनपर युग की विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव दिखाई देता है। वर्माजी के आलोच्य युग में प्रकाशित उपन्यासों में हैं - 'तीन वर्ष' (1936) और 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' (1946)। 'चित्रलेखा' (1934) उपन्यास हिंदी साहित्य का कीर्ति-स्तंभ माना जाता है तथा वर्माजी का यह सर्वप्रथम महत्वपूर्ण उपन्यास है। उसमें सामाजिक पक्ष को इसप्रकार उजागर किया है -

उपन्यास की शुरूआत ही एक सामाजिक समस्या से की जाती है - वह है पाप और पुण्य। वर्माजी ने 'चित्रलेखा' उपन्यास में पाप-पुण्य की शाश्वत सामाजिक समस्या का चित्रण किया है। यह उपन्यास पाप-पुण्य की समस्या को विशिष्ट कोण से उजागर करनेवाला है। इस में भाव और विचारों में, व्यक्ति और समाज में प्राचीन और नवीन में एवं परंपरा तथा प्रयोग में परस्पर विरोध चित्रित कर व्यक्तिगत मान्यताओं की कसौटी पर जीवन की समस्याओं को परखने का लेखक ने प्रयत्न किया है। उपन्यास के कथानक का वर्णन केवल एक वर्ष की अवधि में ही किया है। श्री रामप्रकाश कपूर कहते हैं यह उपन्यास कोई ऐतिहासिक चरित्र प्रधान, सामाजिक अथवा वातारण-प्रधान उपन्यास नहीं है। वे उस उपन्यास को पूरी तरह समस्या प्रधान उपन्यास बतलाते हैं। समाज में अनेक समस्याएँ रहती हैं जैसे-नारी समस्या, विधवा समस्या, शिक्षा समस्या, अवैध प्रेम समस्या, दहेज प्रथा समस्या, बहु विवाह, अनमेल विवाह, वेश्या समस्या आदि। इन सभी समस्याओं में और एक समस्या है वह पाप-पुण्य की समस्या। इस पाप-पुण्य की समस्या से जुडे अनेक वे महत्वपूर्ण प्रश्न भी हैं जो इस उपन्यास में बार-बार उठाए गए हैं। विवाह, प्रेम, धर्म, ईश्वर, व्यक्ति, परिस्थिति आदि के संदर्भों को लेखक ने जगह-जगह ज्वलंत प्रश्नों के रूप में सामने रखा है। वर्माजी अपनी कृति के बारे में कहते हैं कि "'चित्रलेखा' में एक समस्या है, मानव जीवन को तथा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है।"[9] इस उपन्यास में वर्माजी ने समाज में स्थापित नैतिक मूल्यों को चुनौती देकर उनका पुनर्मूल्यांकन करना चाहा है। इसकी मुख्य समस्या पाप और पुण्य की है। इस उपन्यास में वर्माजी ने व्यक्तिवादी एकांगी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है और उसे वस्तुतः केवल विभिन्न व्यक्तियों के दृष्टिकोणों की विषमता बताया है। उस समय समाज में धार्मिक रूढ़िवाद, पुरानी नैतिक मान्यताओं तथा परंपरागत सामाजिक धारणाओं के विरुद्ध वर्माजी का स्वर बराबर प्रखर होता गया है। वर्माजी ने इस उपन्यास में पाप-पुण्य की समस्या को लेकर कथावस्तु तैयार की है। यह समस्या सामाजिक है। इसका हल करने के लिए वर्माजी ने किसी भी काल में पाए जानेवाले तीन सबल पात्रों का निर्माण किया है। उसीमें से पहला पात्र जो उपन्यास की नायिका के रूप में है, विदुषी एवं दार्शनिक नर्तकी चित्रलेखा है। दूसरा पात्र पाटलिपुत्र नगरी का एक समृद्ध सामंत बीजगुप्त है, वह मूर्तिमान अनुराग है। तीसरा पात्र एक योगी कुमारगिरि है। वह विरागी है। इन दोनों में बीजगुप्त भोगी के रूप में है तो दूसरा योगी के रूप में कुमारगिरि है।

वर्माजी ने अपने साहित्य में यथार्थ को महत्व दिया है। उनके औपन्यासिक साहित्य की व्यापक सामाजिक चेतना के अंतर्गत लोक-व्यवहार, संस्कृति और भारतीय आदर्श सब कुछ आ जाते हैं। समाज में फैली हुई अव्यवस्था की अमरबेल को उपन्यासकार ने ठीक-ठीक पहचाना है और उसने देखा कि इसके परिणाम स्वरूप समाज आर्थिक वैषम्य से आक्रांत हो रहा है। इसलिए वर्माजी ने अपने साहित्य में इस विभीषिका का रूप उजागर किया है।

भगवतीकरण वर्माजी के साहित्य की यह एक प्रमुख विशेषता है कि उसमें वे न तो उपदेशक बनकर आए हैं और न आदर्शवादी नेताओं की भाँति उन्होंने आदर्शों की बाढ़ से समस्याओं का हल खोजने का प्रयास किया है। उन्होंने समाज को उसकी यथार्थ स्थिति से अवगत कराते हुए भलाई-बुराई, सुख-दुःख का चित्रण कर मानवमन की गहराइयों को थहाकर सामाजिक समस्याओं पर अपने उपन्यासों के कथानक का निर्माण किया है। वर्माजी के औपन्यासिक-सामाजिक चेतनार्तगत यहाँ हम देखने का प्रयत्न करेंगे कि उन्होंने अपने समय की समाज-व्यवस्था को किस स्तर तक अभिव्यक्ति प्रदान की है और विभिन्न सामाजिक वर्गों, उसके संगठन के आधारों, परंपराओं, रीति-रिवाजों, उसकी व्यवस्थाओं, संघटनों की मान्यताओं आदि को वे किस सीमा तक ग्रहण कर सके हैं। इसके लिए भारतीय समाज के परंपरागत ढाँचे को एक विहंगम दृष्टि से देखा जाना नितांत आवश्यक है। परंतु वर्माजी के उपन्यासों के प्रतिपाद्य की व्यापकता और चित्रण के दीर्घ अंतराल को देखते हुए यह और आवश्यक हो जाता है कि इस सब की समीक्षा के पूर्व सामाजिक चेतना के नवजागरण की पृष्ठभूमि और सुधार आंदोलनों की संक्षिप्त चर्चा कर लें, जिसके आलोक से भारतवर्ष का चित्र पुराने संस्कार को झाड़ कर नवीन मार्ग के अनुसंधान में प्रवृत्त हुआ था। नवीन आशा और अभिनव आकांक्षा के प्रति जैसा अडिग विश्वास इस समय दिखाई दिया वह शताब्दियों से अपरिचित-सा हो गया। यद्यपि इसके पहले भारतवर्ष आत्म-चेतना से शून्य नहीं था, परंतु उसका मानस-मंदिर संपूर्ण रूप से मुक्त नहीं हुआ था।

विवाह समस्या एक सामाजिक समस्या है। वर्माजी के अनुसार व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक संगठनों में योग देना उसका कर्तव्य है। विवाह न करके वह कर्तव्य से विमुख होकर अराजकता को प्रश्रय देता है। इसी समस्या को जो नारी के संबंध में है उसे वर्माजी ने यथार्थता के साथ 'चित्रलेखा' में उजागर किया है। विधवा समस्या भी समाज में देखने को मिलती है विधवा-प्रथा द्वारा नारी का जितना अमानुषिक शोषण हुआ है, संभवतः समाज के अन्य किसी विधान द्वारा न हुआ होगा। यह प्रथा जहाँ एक ओर अनेक सामाजिक दोषों का परिणाम है, वहीं दूसरी ओर कतिपय सामाजिक समस्याओं की जन्मदात्री है। रूढ़ियों, परंपराओं, प्रथाओं और प्राचीन मान्यताओं से ग्रस्त समाज में अनेक समस्याएँ स्वतंत्र न रहकर कई सामाजिक दोषों की श्रृंखला में कड़ीबद्ध हो जाती हैं। हिंदु समाज में विधवा-प्रथा एक ऐसी ही समस्या रही है, जो अनेक सामाजिक दोषों को आत्मसात करती हुई व्यक्ति और समाज के लिए महत्त्वपूर्ण समस्या बनी, फिर भी समाज द्वारा उपेक्षित रही। विधवा बेचारी वैसे ही दुःख-भार से बोझिल जीवन ढोती थी, दूसरे सामाजिक दृष्टिकोण इतना अनुदार था, यह सहज अनुमेय है। उसका उठना-बैठना, खाना-पीना, ओढ़ना-पहनना सब समाज की नजर में आलोचना की वस्तु थे। ऐसी दशा में शायद पति के साथ सती होना आसान रहा होगा, क्योंकि यह वैसा ही समाधान है जैसे अत्याचार सहते-सहते नैराश्य के कुहासे में डूबकर आत्महत्या कर ली जाए। समाज-सुधारकों

ने अमानुषित सती-प्रथा पर तो कानूनी नियंत्रक लगा दिए, परंतु विधवा के सामाजिक जीवन की समस्याओं और उनके समाधान पर कभी विचार नहीं किया। यह तत्कालीन सामाजिक स्थिति थी। मगर वर्माजी ने 'चित्रलेखा' उपन्यास में नायिका चित्रलेखा भी एक विधवा नारी है मगर उसे सुधारवादी और चंचल नारी के रूप में चित्रित किया है। वह इस बंधन को मानती है। चंचलता के कारण उसके जीवन में अनेक पुरुष आते हैं।

उपन्यास का नाम इसके चरित्रप्रधान होने की गवाही देता है। चित्रलेखा उपन्यास के प्रत्येक पात्र को जैसी अपने ईशारों पर संचालित करती है। उपन्यास में पाप-पुण्य के बारे में देखते हैं तो पाप-पुण्य भी जैसे उसके बिना पाप-पुण्य नहीं दीखते हैं। उपन्यास के सभी पात्रों के सृजन विकास और विनाश में उसकी सक्रिय और निर्णायक भूमिका रही है। सारे पात्र एक जैसे न होकर उनमें अलग ही अपनी-अपनी विशेषता है। उनमें जैसे योगी, भोगी, नर्तकी, ब्रह्मचारी, सामंत सब के सब लगता है विशिष्ट प्रकार से निर्मित हुए हैं। सभी पात्र सुबुद्ध तथा ज्ञानी हैं। किंतु वे सभी वर्माजी के अनुसार परिस्थितियों के दास हैं। जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है वैसे-वैसे उनके प्रारंभ के रूप में अनेक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। ऐसा लगता है जैसे किसी एक ही नाव में सवार एकाधिक व्यक्ति अपने-अपने ढंग से पतवार चलाते हुए नाव के संतरण में अपनी-अपनी भूमिका की विशिष्टता प्रमाणित कर रहे हैं।[10] सभी पात्र असाधारण व्यक्तित्वों के स्वामी हैं। सभी पात्र गतिशील रहने के कारण असाधारण हैं। उन सभी में अपनी अलग खूबियाँ, खामियाँ, गरुता, लघुता है। वह अपनी तुच्छताओं को स्वीकार कर व्यक्त कर देने में जरा भी संकोच नहीं करते। इसका उदाहरण महाप्रभु रत्नांबर है। महाप्रभु रत्नांबर अपने ज्ञानी होने के झूठे दंभ को न पालकर शिष्यों के समक्ष यह स्वीकार कर लेते हैं कि उनका ज्ञान पाप-पुण्य की परिभाषा करने में असमर्थ है। उसी प्रकार दूसरा पात्र चित्रलेखा; वह भी अपने दोषों का उल्लेख कर कुमारगिरि के सम्मुख नत हो जाती है, बीजगुप्त के सामने वही चित्रलेखा पश्चाताप करती है। उसी प्रकार श्वेतांक भी कई बार अपने स्वामी के सामने अपनी गलतियों के लिए क्षमायाचना करता है। इसप्रकार व्यक्तित्वों की असाधारणता के परिणाम स्वरूप ही इस उपन्यास के सभी पात्र एक दूसरे को बेहद बाँधते हैं, छोड़ देते हैं, और फिर आकृष्ट कर जोड़ लेते हैं। इस प्रकार इस समस्याप्रधान उपन्यास में वर्माजी ने पात्रों की रचना की है।

'चित्रलेखा' उपन्यास की शुरूआत ही एक समस्या प्रधान प्रश्न से होती है उसका संबंध समाज से है। वह प्रश्न महाप्रभु रत्नांबर के शिष्य श्वेतांक ने उनसे ही पूछा : 'पाप क्या होता है? यह विकट प्रश्न अपने शिष्य श्वेतांक द्वारा पूछा जाने पर गुरु महाप्रभु रत्नांबर ने कहा, 'पाप की परिभाषा करने की मैंने भी कई बार चेष्टा की है, पर सदा असफल रहा हूँ। पाप क्या है, और उसका निवास कहाँ है? यह एक बड़ी कठिन समस्या है; जिसको आज तक नहीं सुलझा सका हूँ। अविकल परिश्रम करने के बाद, अनुभव के सागर में उतरने के बाद भी जिस समस्या को नहीं हल कर सका हूँ, उसे किस प्रकार तुमको समझा दूँ?' रत्नांबर ने रुक कर फिर कहा - 'पर श्वेतांक, यदि तुम पाप जानना ही चाहते हो, तो तुम्हें संसार ढूँढना पड़ेगा। इसके लिए यदि तैयार हो, तो संभव है, पाप का पता लगा सको।'[11]

महाप्रभु रत्नांबर के इस कथन से लेखक बताना चाहते हैं कि इस संसार में कोई भी ऐसा नहीं की जो 'पाप' की परिभाषा कर सके, पाप की परिभाषा नहीं की जा सकती। इसप्रकार रत्नांबर ने 'पाप' की परिभाषा को समझ लेने के लिए अपने दोनों शिष्यों को जनसमाज में रहनेवाले दो महानुभवों के यहाँ रखने का निश्चय

किया। वहाँ रहकर वे दोनों को स्वयं पाप का पता लगाने का आदेश देते हैं। उन दोनों में से ब्राह्मण विशालदेव को योगी कुमारगिरि के पास तथा क्षत्रिय श्वेतांक को भोगी-सामंत बीजगुप्त के पास रखा।

इस प्रकार रत्नांबर अपने दोनों शिष्यों को समाज में पाप का अनुभव लेने के लिए छोड़ देते हैं। उनमें से वासनाओं पर विजय पानेवाले विरागी कुमारागिरि के लिए 'संयम उसका साधन है और स्वर्ग उसका लक्ष्य' तथा भोग-विलास में मग्न सामंत बीजगुप्त के लिए 'आमोद-प्रमोद ही उसके जीवन का साधन है तथा लक्ष्य भी है।' [12] बीजगुप्त और कुमारगिरि में यही फर्क था, जो योगी और भोगी थे। उनमें से योगी था, वह समाज से दूर कुटी में रहता था। दूसरा भोगी समाज में भोग-विलास में मग्न रहता है। गुरु रत्नांबर का उनके दोनों शिष्यों के लिए आदेश था, 'इसके पहले कि मैं तुम लोगों को संसार में भटक कर अनुभव प्राप्त करने को छोड़ दूँ, तुम्हें परिस्थितियों से भिज्ञ करा देना आवश्यक होगा। इस नगर के दो महानुभावों से मैं यथेष्ट परिचित हूँ, और इस कार्य को पूरा करने के लिए तुम लोगों को इन दोनों की सहायता की आवश्यकता होगी। एक योगी है और दूसरा भोगी - योगी का नाम है कुमारगिरि और भोगी का नाम है बीजगुप्त। तुम दोनों के जीवन को इनके जीवन-स्रोत के साथ-साथ ही बहना पड़ेगा।' [13]

गुरु शिष्य की इस परंपरा से यह स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में गुरुकुल पद्धति थी। इस पद्धति में शिष्यों को ज्ञान देने के बदले फीस नहीं ली जाती थी, अपितु गुरु-दक्षिणा के रूप में शिक्षा समाप्ति पर कुछ माँग लिया जाता था। एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्र गुरुभाई कहलाते थे, जैसा कि रत्नांबर के इस कथन से स्पष्ट होता है - 'बीजगुप्त! तुमसे सब बातें स्पष्ट रूप से कहूँगा। आज मेरे इस शिष्य ने मुझसे प्रश्न किया कि पाप क्या है? मैं इसका उत्तर देने में असमर्थ हूँ, तुम मेरी सहायता कर सकते हो। तुम मेरे शिष्य रहे हो, मैंने कभी तुमसे कोई गुरु दक्षिणा नहीं ली। पाप का पता लगाने के लिए ब्रह्मचारी की कुटी उपयुक्त स्थान नहीं है, संसार के भोग-विलास में ही पाप का पता लग सकेगा। तुम्हारा भवन और तुम्हारा समाज इन चीजों से श्वेतांक को भिज्ञ कराना आवश्यक है, इसलिए मैं इसको तुम्हारे सामने सेवक रूप में उपस्थित कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि इसे तुम सेवक रूप से स्वीकार करो पर एक बात और याद रखना, श्वेतांक तुम्हारा गुरुभाई भी हो सकता है।' [14] इससे तत्कालीन सामाजिक स्थिति-परिस्थिति का बोध होता है।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति में सामंत लोगों की स्थिति बड़ी अच्छी थी वह बड़े धनवान थे। उन्हें नगरों में मान-सम्मान का स्थान दिया जाता था अनेक समारोह, भोजों में उन्हें सम्मानित किया जाता था। उनका जीवन भोग-विलासी था। बीजगुप्त के बारे में कथन से उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है - रत्नांबर श्वेतांक से कहते हैं - 'बीजगुप्त भोगी है, उसके हृदय में यौवन की उमंग है और आँखों में मादकता की लाली। उसकी विशाल अट्टालिकाओं से भोग-विलास नाचा करते हैं रत्नजटित मदिरा के पात्रों में ही उनके जीवन का सारा सुख है। वैभव और उल्लास की तरंगों में वह केलि करता है। ऐश्वर्य की उसके पास कमी नहीं है। उनमें सौंदर्य है और उसके हृदय में संसार की समस्त वासनाओं का निवास है। उसके द्वार पर मातंग झूमा करते हैं। उसके भवन में सौंदर्य के मद से मतवाली नर्तकियों का नृत्य हुआ करता है। ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं, शायद उसने कभी ईश्वर के विषय में सोचा तक नहीं है, और स्वर्ग तथा नरक की उसे कोई चिंता नहीं। आमोद-प्रमोद ही उसके जीवन का साधन है तथा लक्ष्य भी है।' [15] इस वर्णन से बीजगुप्त का चित्रण सामने आता है।

बीजगुप्त पाटलिपुत्र नगर की सर्वसुंदरी नर्तकी से प्रेम करता था, इतना ही नहीं तो वह उसे अपनी पत्नी भी मानता था। इस संबंध पर उसे लज्जा नहीं आती थी बल्कि उसे गर्व था। इस भोग-विलास भरे समाज में छिपानेवाली कोई बात ही नहीं थी, बल्कि वह चित्रलेखा के साथ राजमार्गों में आता-जाता है। बीजगुप्त का प्रेम एक नर्तकी से, वेश्या से है यह देखकर श्वेतांक को पाप के दर्शन नैतिक दृष्टि से वहाँ पहुँचते ही होने चाहिए थे; परंतु उस काल में इसे पाप नहीं माना जाता था। महाप्रभु रत्नांबर अर्धरात्रि के समय चित्रलेखा नर्तकी को बीजगुप्त के केलिगृह में देखकर इसलिए आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि ऐसी नर्तकी किसी व्यक्ति की नहीं बल्कि संपूर्ण समाज के आमोद-प्रमोद की चीज मानी जाती थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में विधवा स्त्री जब नर्तकी बनती है और उसे राजनर्तकी का स्थान दिया जाता है तो उस स्त्री का स्थान समाज में इसी चित्रलेखा के समान ही रहता है।

उपन्यास की नायिका चित्रलेखा के माध्यम से उस समय के समाज में जन-सामान्य में नारी के प्रति क्या दृष्टिकोण था उसका परिचय मिलता है। उस समय विधवा को संयम पूर्ण उर्वरित जीवन जीना पडता था। संयम भंग होने पर उसे घर से निकाला जाता था। विधवा को पुनर्विवाह की अनुमती नहीं दी जाती थी। नारी को समाज द्‌वारा तिरस्कृत किए जाने पर उसे नर्तकी या वेश्या बनना पडता था। नर्तकी का समाज में और राज-दरबार में उचित सम्मान किया जाता था, परंतु कुलीन नारियों के समान नर्तकी को सम्मान नहीं मिलता था। इस प्रकार की नर्तकी से कोई पुरुष प्रेम करे तो भी शास्त्रसम्मत ढंग से उससे वह विवाह नहीं कर सकता था। अगर उनकी कोई संतान हुई तो उसे संपत्ति का उत्तराधिकारी होने का अधिकार नहीं था। परंतु आधुनिक वेश्याओं और नर्तकियों की तुलना में तत्कालीन नर्तकी की मर्यादा अधिक थी। ये सारे उस समय की विधवा नारी के बारे में सामजिक विचार थे। मगर इसी समय के उपन्यास में वर्माजी ने एक अलग रूप में चित्रलेखा का वर्णन किया दिखाई देता है। चित्रलेखा विधवा होकर भी किस प्रकार समानाधिकार पाकर अपना जीवन यापन करती है। इसका यथार्थ वर्णन उपन्यास में वर्माजी ने किया है। नर्तकी होकर भी वेश्या नहीं बनती है। इसीका वर्णन उपन्यास में करते हुए अलग रूप से वर्माजी ने चित्रलेखा का चरित्रांकन किया है।

'चित्रलेखा' में वर्माजी ने मुक्त-प्रेम का समर्थन कर नारी-अधिकारों को पहली बार स्वीकृति दी। 'चित्रलेखा' को एक ऐसी नारी के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने विद्रोही व्यक्तित्व द्‌वारा समाज की समस्त रूढ़ियों एवं परंपरागत नैतिक मूल्यों को नकारती हुई आज की बुद्‌धिवादी नारी के समान अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सजग है। वह प्रेम विषयक सामाजिक नैतिकता पर प्रहार करती हुई आधुनिक नारी के समान उन्मुख प्रेम की घोषणा करती है। विधवा होने पर भी स्वयं को प्रेम का अधिकारी मानती है। वह क्षत्रिय एवं शुद्र माँ-बाप की संतान कृष्णादित्य से प्रेम करती है। समाज द्‌वारा मान्यता न मिलने पर वह प्रेम-मार्ग को नहीं छोड़ती, घर छोड़ना स्वीकार कर लेती है। कृष्णादित्य द्‌वारा आत्महत्या कर लेने पर समाज की नैतिक-मान्यताओं से परास्त न होकर वह इनके विरुद्‌ध संघर्ष करती है। वह नर्तकी बनती है? वेश्या नहीं। इसके मूल में उस अभिजात्य-वर्ग को नीचा दिखाने की कामना है जो उसके जीवन की इस स्थिति के लिए उत्तरदायी है और जिसने तथाकथित मर्यादा भंग होने के डर से उसे कृष्णादित्य से विवाह की अनुमति प्रदान नहीं की। उसका अहं इस बात से संतोष पाता है कि पुरुष के संरक्षण के बिना भी, पुरुष-प्रधान-समाज में सामाजिक मान्यताओं

एवं रूढ़ियों की अवहेलना करता हुआ उसका अस्तित्व अक्षुण्य है। नर्तकी होने के कारण प्रेम उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर की वस्तु था, किंतु समाज की थोथी परंपराओं की खातिर उसने अपने प्रेम की कुर्बानी देना स्वीकार नहीं किया। अपितु बीजगुप्त के प्रति अपने प्रेम को प्रकट कर उसकी पत्नी बन कर रहना प्रारंभ कर दिया। वह परंपराजीवी नारी के समान विवश, परतंत्र अथवा व्यक्तित्व विहीन नहीं है, अपितु नारी के विकास में बाधक सामाजिक रूढ़ियों को कुचलती हुई प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारती। उसका आचरण आधुनिक-युग की सजग सचेत, प्रबुद्ध-नारी के अनुरूप है जो अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है। आधुनिक नारी के समान वह व्यावहारिक एवं तर्कशील है, जिसके बल पर वह लोकप्रियता प्राप्त करती है तथा अपनी स्पष्टवादिता के कारण अपराजेय रहती है। उसके अनुसार नारी पुरुष की पूरक एवं सहयोगिनी है। चित्रलेखा अपनी इच्छा की स्वामिनी स्वयं है, अपने जीवन की दिशा निर्धारित करने में समर्थ है। प्रत्येक कार्य का निर्णय वह स्वयं करती है न कि बीजगुप्त का परामर्श लेकर। बीजगुप्त के साथ रहती हुई भी वह स्वतंत्र व्यक्तित्व रखती है। पुरुष का अधिकार उसे सहन नहीं। बीजगुप्त द्वारा इतने दिन न आने का कारण पूछे जाने पर वह उत्तर देती है 'अधिकारी हो, इतना नहीं जानती थी। मनुष्य पर मनुष्य का क्या अधिकार है, यह मैं समझ नहीं सकी।' लेखक ने उसे ऐसी नारी के समान चित्रित नहीं किया जो पुरुष की प्रताड़ना चुपचाप सह ले। उसका अहम् प्रबल है, यह दिखाते हुए लेखक रेखांकित करता है कि जब-जब उसे पुरुष-प्रधान समाज से उपेक्षा प्राप्त हुई, तिरस्कार, मिला, तब-तब उसने शोषक पर आधारित मान्यताओं की अवहेलना की। लेखक उस नारी की दयनीय स्थिति की ओर सहानुभूतिपूर्वक देखता है जिसे पुरुष-प्रधान समाज द्वारा सदैव किसी न किसी नई युक्ति से सामाजिक मान्यताओं को जन्म देकर जीवन-पर्यंत शोषण का पात्र बनाया जाता रहा। कभी शास्त्रसंमत विवाह द्वारा पत्नी के गौरव का लालच देकर, कभी नारी के पातिव्रत्य धर्म का स्मरण कराकर। नारी अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी इन पदों की प्राप्ति करना अपने जीवन का उद्देश्य समझती रही। विद्रोहिणी चित्रलेखा इन सबको नकारती है। अपनी स्वाभाविक वृत्तियों को कुचलकर खोखली मर्यादा को ओढ़ना उसे स्वीकार नहीं। वह आज की बुद्धिवादी नारी के समान प्रेम को परिस्थिति सापेक्ष मानती है, उसे नश्वर समझती है तथा अपनी तर्कशीलता के बल पर इसे इस प्रकार सिद्ध करती है कि बीजगुप्त को भी दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। 'नहीं, बीजगुप्त का अनुमान मिथ्या है। चित्रलेखा का प्रेम सागर की भाँति गंभीर है, उसका बदलना असंभव-सा है; पर साथ ही मैं यह मानती हूँ और उसको ठीक भी समझती हूँ कि प्रेम परिवर्तनशील है। प्रकृति का नियम परिवर्तन है, प्रेम उसी प्रकृति का एक भाव है। प्रकृति का नियम प्रेम पर भी लागू हो सकता है।' [16] प्रेम को व्यावहारिक धरातल पर रखकर देखना उसकी प्रगतिशीलता का परिचायक है। उसके माध्यम से लेखक ने यौननैतिकता के नवीन मूल्यों को उपस्थित किया है जिनके अनुसार परंपरागत नैतिक मूल्यों की अवहेलना करनेवाली नारी भी घृणा की पात्र नहीं है। उपन्यास के अंत में बीजगुप्त द्वारा चित्रलेखा को अपनाना लेखक के नारी विषयक स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण को व्यंजित करता है। जिसमें नारी की पवित्रता का मानदंड शरीर नहीं है। वर्माजी के उपन्यास में एकनिष्ठता से स्खलन नारी का अक्षम्य अपराध नहीं माना गया। उनकी नारी विषयक यह नूतन परिकल्पना सदियों से चली आ रही रूढ़ियों में जकड़ी नारी को बंधन-मुक्त कर संघर्षशील नारी के रूप में सामने लाती है जो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। उपन्यास में स्त्री को मोहमाया, अंधकार मानने वाले योगी को वासना एवं ज्ञान, दोनों क्षेत्रों में नारी के द्वारा ही पराजित होते दिखाया जाना इस ओर

संकेत करता है कि वर्माजी को नारी विषयक यथार्थवादी दृष्टिकोण स्वीकार्य नहीं जिसमें नारी को शारीरिक एवं मानसिक रूप से दुर्बल मानकर पुरुष को भी दुर्बल बनानेवाली माना जाता है।

उपर्युक्त विचार नारी की सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए किए जा रहे उन प्रयासों के परिणाम हैं, जो पुनर्जागरण काल में ब्रह्म-समाज तथा आर्य-समाज आदि के द्वारा किए जा रहे थे। इसके प्रभाव के कारण बंगला तथा हिंदी उपन्यासों में नारी-पुरुष की समानता, स्त्री-शिक्षा अंतर्जातीय प्रेम-संबंधों की चर्चा, वेश्या एवं विधवा की दयानीय दशा आदि का चित्रण किया गया। अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप आई वैयक्तिकता के कारण नारी भी 'व्यक्ति' बनती गई तथा उसकी समानता एवं मुक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ने लगा। भगवतीचरण वर्मा ने भी तद्युगीन प्रभाव के परिणाम स्वरूप चित्रलेखा नामक नर्तकी को केंद्र में रखकर उपन्यास की रचना की जिसमें अपने नारी विषयक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। वर्माजी ने विधवा अथवा नर्तकी को भी प्रेम करने का उतना ही अधिकार दिया जितना समाज के सम्मानित सदस्य बीजगुप्त को। उन्होंने विधवा को पत्नी के बराबर स्थान प्राप्त करने के योग्य बताया है। समाज में नर्तकी अथवा वेश्या का प्रेम, प्रेम न होकर वासना अथवा भूख माना जाता रहा, किंतु वर्माजी बीजगुप्त को नर्तकी से प्रेम करते दिखाते हैं, जो मात्र वासना नहीं है। वह उसे 'पत्नीव्रत' स्वीकार करता है, संपत्ति नहीं समझता। उसके नर्तकी होने से न तो बीजगुप्त की दृष्टि में उसका सम्मान कम होता है और न प्रेम में ही कोई अंतर आता है। चित्रलेखा कुमारगिरि की भोग्या बनती है, इसके पश्चात् भी बीजगुप्त के हृदय में उसके प्रति प्रेम समाप्त नहीं होता। 'प्रेम के प्रांगण में कोई अपराध नहीं होता' कहकर वह चित्रलेखा को सहज भाव से स्वीकार करता है। चित्रलेखा को भी अंत में बीजगुप्त के समक्ष आत्मसमर्पण करते तथा स्वयं को 'पापिनी' मानते हुए दिखाया गया है।

लेखक द्वारा प्रस्तुत किए गए नारी संबंधी परस्पर विरोधी विचार वस्तुतः परंपरा एवं आधुनिकता के द्वंद्व का परिणाम है। एक ओर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाने तथा चित्रलेखा के चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता लाने के लिए उसकी मानसिकता के निर्माण में सामंती-मूल्यों का सहयोग लिया गया है, दूसरी ओर उसके उच्छृंखल आचरण द्वारा लेखक ने अपने नारी विषयक प्रगतिशील दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। वस्तुतः हिंदी उपन्यासों के क्षेत्र में स्वच्छंदतावाद एवं सुधारवाद का आगमन साथ-साथ हुआ। वर्माजी के नारी विषयक दृष्टिकोण में एक ओर आधुनिकता का समर्थन है तो दूसरी ओर मध्यकालीन बोध की ओर झुकाव। यह युग का प्रभाव है।

'चित्रलेखा' लिखने के पिछे वर्माजी का उद्येश्य चित्रलेखा के माध्यम से विधवा-समस्या को प्रस्तुत करना नहीं है, वे पाप और पुण्य की समस्या को ही प्रस्तुत करना चाहते हैं। उस संदर्भ में नारी-शोषण, विधवा समस्या आदि प्रश्न अपने आप ही उभर आते हैं तथा वर्माजी की नारी-भावना को व्यक्त करते हैं। यहाँ ऐसी प्रगतिशील नारी की कल्पना की गई है जो अपने व्यक्तित्व के विकास; अपने अधिकार एवं कर्तव्य आदि के बारे में सचेत है। स्पष्ट है कि वर्माजी का नारी-विषयक दृष्टिकोण प्रगतिशील एवं स्वच्छंदतावादी है।

वर्माजी का नारी-विषयक दृष्टिकोण देखते समय उपन्यास की प्रधान पात्र के रूप में चित्रलेखा है उसका प्रेम परिवर्तनशील है। कृष्णादित्य की मृत्यु के बाद उसके जीवन में तीसरा व्यक्ति बीजगुप्त के रूप में प्रवेश करता है। इस बार चित्रलेखा ने प्रेम में केवल पिपासा और कभी-कभी आत्म-विस्मरण का अनुभव किया,

आत्म-बलिदान का नहीं। इस बार उसने प्रेम की मादकता को देखा। [17] इस प्रकार हम देखते हैं कि चित्रलेखा का प्रेम परिवर्तनशील है।

तत्कालीन समाज वर्गों में विभक्त था। विवाह संबंध के समय वर्ग भेद को ध्यान में रखा जाता था। समान आर्थिक स्तर के लोगों में ही विवाह-संबंध हुआ करते थे। पुत्र न होने पर दत्तक-पुत्र उत्तराधिकारी हो सकता था-पुत्री नहीं।

उस समय सामंतों का जीवन बहुत विलासमय और भोगप्रधान था। उपन्यास में तत्कालीन नागर सामंती समाज की झाँकी उपस्थित की गई है। सामंत अपना जीवन उल्लास और विलास में बिताते हैं। राजपथ के विशाल जनरव को चित्रलेखा का स्वागत करते हुए दिखाकर लोगों की कलाप्रियता की ओर संकेत किया गया है तथा बताया गया है कि पुरुष समाज नर्तकी के सौंदर्य और कला की प्रशंसा मुक्त हृदय से करता था। सामंतों की नियुक्ति राजाज्ञा से की जाती थी। इस समय के सामंतों के आमोद-प्रमोद का भी वर्णन किया गया है। वन-विहार, जल-क्रीडा, रथ धावन आदि सामंतों के मनोरंजन के साधन थे। वाहन के रूप में रथों का प्रयोग होता था तथा सेवा के लिए दास-दासियाँ हर समय उपस्थित रहते थे। नर्तकी चित्रलेखा के सौंदर्य के कारण सभी सामंतगण उसकी तरफ आकर्षित थे। जब चित्रलेखा रथ पर आरूढ होकर नगरयात्रा करती है तभी रास्ते पर सामंत गण हाथों में फूलों के हार लिए उसका स्वागत, सम्मान करते हैं उसपर फूल और फूलोंके हार फेंकते हैं। इससे सामंत भोग-विलासी हैं इसका पता चलता है।

चित्रलेखा उपन्यास में मौर्यकालीन समाज का चित्रण है। तत्कालीन समाज में नृत्य-संगीत इसी प्रकार की अनेक कलाओं को महत्व दिया जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि सामंत लोग या उस समय का समाज कलाप्रेमी था। उस समय कला का आदर किया जाता था। लोग कलाप्रेमी होने के कारण ही चित्रलेखा का नृत्य देखने के लिए उत्सुक रहते हैं। कलाप्रेमी होने के कारण उपन्यास में कई स्थानों पर इसका उल्लेख आया है। इन लोगों के पास भी नृत्य संगीत गायन कला अंगभूत रहती थी। जैसे मृत्युंजय, बीजगुप्त को गायन और संगीत कला के बारे में जानकारी थी, उसी प्रकार यशोधरा को भी गायन कला के बारे में ज्ञान था। यह कला उसके अंगीभूत थी, उसी प्रकार कलाप्रेमी नर्तकी चित्रलेखा के पास तो सभी कलाएँ आत्मसात थीं। इसकी प्रतीति चंद्रगुप्त के दरबार में सामंत मृत्युंजय के भोज प्रसंग में उसी प्रकार यशोधरा के जन्मदिन के समारोह में इसका अनुभव आता है।

अनेक प्रसंगों में बड़े-बड़े यज्ञ किए जाते थे, और उस समय विद्‌वानों में तार्किक विवाद हुआ करते थे। नृत्य-संगीत का आयोजन भी उसी अवसर पर किया जाता था। यशोधरा के जन्मोत्सव में उच्च्य-कुलीन नागरिकों के साथ चित्रलेखा जैसी नर्तकी को और कुमारगिरि जैसे योगी को भी निमंत्रित किया जाता था। ऐसे उत्सवों के अवसर पर बीजगुप्त जैसा सामंत मृदंग बजाता है, गाना गाता है, मृत्युंजय भी वीणा-वादन करते हैं। इस वर्णन से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में सामंत-गण कला प्रेमी होते थे और अन्य कलाओं में प्रवीण भी होते थे।

राजदरबार का चित्र प्रस्तुत करते हुए लेखक ने तत्कालीन राज-मर्यादा एवं व्यवस्था का वर्णन किया है। राजा रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठता है। वह राजदरबार में होनेवाले कला-प्रदर्शन के कार्यक्रमों तथा शास्त्रचर्चाओं

और तार्किक वाद-विवादों में सम्मिलित होता है। यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, सिर्फ ऐतिहासिक वातावरण की निर्मिति की है। इसमें पाटलिपुत्र नगरी का वर्णन है। इसी नगरी में कथावस्तु का पूरी तरह वर्णन किया हुआ दिखाई देता है। मौर्यकालीन सम्राट चंद्रगुप्त शासन-काल का वर्णन देखने को मिलता है। परंतु इसमें दो ही पात्र ऐतिहासिक है एक तो सम्राट चंद्रगुप्त और दूसरा पात्र उनके महामंत्री के रूप में चाणक्य है। इसके अलावा उपन्यास के प्रमुख पात्र जैसे चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि हैं पर वे ऐतिहासिक पात्र नहीं हैं, काल्पनिक मात्र है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह उपन्यास ऐतिहासिक नहीं है। आभास मात्र है। इसका वातावरण और सृष्टि मोहक एवं सजीव है, पर चंद्रगुप्त के युग का आभास मात्र ही कराती है। तथा उपन्यास के कथानायक से संबंध होने पर भी तत्कालीन वातावरण का संपूर्ण प्रभाव उत्पन्न करने में असमर्थ है।[18] उपन्यास में हमें सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना ज्यादा नहीं दिखाई देती।

'चित्रलेखा' उपन्यास लिखने के पीछे वर्माजी का सिर्फ मौर्यकालीन वातावरण को प्रस्तुत करना ही मुख्य उद्‌देश्य नहीं था, अपितु वे बीजगुप्त और चित्रलेखा की प्रेम-कथा के माध्यम से पाप-पुण्य की समस्या को प्रस्तुत करना चाहते थे। पाठकों के हृदय को रसमय करने के लिए ही उन्होंने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाया। यहाँ लेखक ने प्रेम संबंधी पुरानी मान्यताओं का विरोध कर नई मान्यताओं की स्थापना करना चाहता था, जहाँ प्रेम का आधार जाति, वर्ग, ऊँच-नीच आदि न हो। इस प्रकार उन्होंने अपने उपन्यास में प्रेमकथा का वर्णन करते समय इन बातों को महत्व नहीं दिया।

प्रेम यह भी एक सामाजिक समस्या ही है। इस उपन्यास में चित्रलेखा, बीजगुप्त, कुमारगिरि, यशोधरा तथा श्वेतांक के माध्यम से प्रेम के विविध रूपों को उपस्थित करते हुए लेखक ने प्रेम की उस स्थिति को आदर्श बताया है, जहाँ स्व-पर का विभेद मिट जाता है। उपन्यास के अंत में त्याग द्‌वारा उस आत्मविस्तार एवं उन्नयन की ओर संकेत किया गया है जो स्वच्छंदतावादी प्रेम की अनन्य विशेषता है। सामाजिक और नैतिक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश, रोमानी स्वच्छंदता का आग्रह, प्रेम के लौकिक रूप की स्वीकृति अर्थात मन और शरीर के प्रति सहज आकर्षण आदि स्वच्छंद प्रेम की अनन्य विशेषताएँ हैं। इन्हीं विशेषताओं को वर्माजी ने इस उपन्यास के द्‌वारा महत्व दिया है।

उसी प्रकार उपन्यास के शुरू में जो प्रेम का चित्रण दिखाई देता है, वह पूरी तरह मांसल एवं भौतिक लगता है। उसमें शारीरिकता को ही ज्यादा महत्वदिया दिखाई देता है। परंतु यही इन दोनों का भौतिक प्रेम ही उपन्यास के अंत में स्थूल प्रेम, प्रेम की उच्चतर भावभूमि पर पहुँचता है। इस प्रेम समस्या के प्रमुख केंद्रित पात्र के रूप में उपन्यास की नायिका नर्तकी चित्रलेखा है। चित्रलेखा अपने जीवन में प्रेम के विविध सोपानों को पास करती हुई प्रेम के उदात्त रूप का महत्व जान पाती है। पहले विधवा होने के बाद कृष्णादित्य से उसने जो प्रेम किया वह प्राकृतिक था तथा पति से किए गए ईश्वरीय प्रेम से भिन्न था। उसमें भक्ति के स्थान पर 'पिपासा' तथा 'आत्मविश्वास' था। कृष्णादित्य मर जाने के बाद चित्रलेखा ने अनुभव किया कि प्रेम अमर नहीं है, एक पवित्र स्मृति प्रतिदिन धुंधली होती हुई मिट भी सकती है।

इसके पश्चात् वह नगर के सबसे सुंदर एवं प्रभावशाली सामंत बीजगुप्त की ओर आकृष्ट हुई। बीजगुप्त से किए गए प्रेम में मन के सहज आकर्षण के अतिरिक्त बौद्‌धिक झुकाव भी है, क्योंकि चित्रलेखा का विश्वास

है कि स्त्री उसी से प्रेम कर सकती है जिसमें पुरुषत्व हो, जो स्वाभिमानी है। प्रेम के बारे में चित्रलेखा अपना मत स्पष्ट करती है, 'स्त्री अपने से निर्बल मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकती।' [19] वर्माजी उपन्यास में चित्रलेखा के हृदय में बीजगुप्त के प्रति प्रेम का स्फुरण कुछ इसी प्रकार दिखाया है। उसका प्रेम गतिशील है, परिवर्तनशील है, स्थिर नहीं। वह सभी को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है।

भगवती चरण वर्मा का दृष्टिकोण वेश्या-समस्या के चित्रण में अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती उपन्यासकारों से भिन्न रहा है। प्रारंभिक उपन्यासकार वेश्याओं को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उनका समाज में होना अनावश्यक मानते हैं। परंतु भगवतीचरण वर्मा की यथार्थान्वेषी दृष्टि ने वेश्या समस्या को बड़ी सहानुभूति के साथ मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'चित्रलेखा' उपन्यास में वर्माजी कला की, अमर साधिका नर्तकी के महत्व का प्रतिपादन कर अपने उदारतावादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। कला की अमर उपासिका नर्तकी, जिसकी आँखों में साधना का पीयूषघट - प्रेम छिपा रहता है। वह अगोचर को वाणी दे अपनी कला में बहुरंगी मयूर-पंखों की आभा ले अंग-परिचालन द्वारा सप्त स्वरों से जीवन का राग गाती है, किंतु समाज नर्तकी की कठिन साधना को क्या समझे? वह तो केवल उसकी कटि, ग्रीवा, कपोल, भ्रूविलास और नयनों की गतिविधियों में उलझकर उलूक-सा मुँह बनाए हुए वाह-वाह करते रह जाता है। योगी और तपस्वी की तरह साधना में अनुरक्त उस नर्तकी को समाज में कोई महत्व नहीं दिया जाता है। उसे अनुरंजन की चलती-फिरती सामग्री समझ कर समाज ने उसके साथ न्याय नहीं किया है। 'चित्रलेखा' उपन्यास में इतिहास तथा चित्रलेखा की वाचालता के अवगुंठन को उठाकर यदि झाँकें तो उसमें प्रेम का पीयूष प्रवहमान दीख पड़ता है, जिसके बीच विद्रोही उक्तियाँ केवल उसकी पुष्टि के लिए लाई जाती हैं।

नर्तकी चित्रलेखा को नायिका बनाकर जो कार्य भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' के ऐतिहासिक परिवेश में किया, वही महत्वपूर्ण कार्य है। वर्माजी ने पाटलिपुत्र की असाधारण सुंदरी 'चित्रलेखा' को वेश्या नहीं, परंतु 'नर्तकी' बनाते हुए दिखाया है। लेकिन यह अन्य सामान्य नर्तकियों अथवा वेश्याओं के समान अनेक पुरुषों की अंकशायिनी नहीं बनती है। वह प्रणय के प्यासे लक्षाधिशों की उपेक्षा कर, मात्र बीजगुप्त से प्रेम करती है। जब वह बीजगुप्त से प्रेम करने लगती है तो उसके जीवन का सुख 'मस्ती' तथा उल्लास-विलास बन जाता है। चित्रलेखा को बीजगुप्त ने प्रश्न किया कि 'चित्रलेखा! जानती हो जीवन का सुख क्या है?' इस प्रश्न पर शृंगार में मग्न चित्रलेखा उत्तर देती है - 'मस्ती।' [20] इस उत्तर से उसके जीवन के बारे में अपने मत स्पष्ट हो जाते हैं।

वर्माजी कहते हैं - 'कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपने आकर्षण के बल पर दूसरों को अपना दास बना लेते हैं।' चित्रलेखा में यह शक्ति थी और वह अनजाने ही इसका प्रयोग किया करती थी। उसका प्रमाण इस उदाहरण से आता है, दास बना लेने की इस इच्छा के कारण ही वह अपने समक्ष गिड़गिडाते हुए कुमारगिरि से स्पष्ट कहती है - 'पुरुष पर अधिपत्य जमाने की इच्छा स्त्री के प्रेम की द्योतक नहीं। मैंने तुम पर अधिपत्य जमा लिया है। किस बल पर तुम मेरा प्रेम चाहते हो?' [21] प्रेम के बारे में चित्रलेखा ने स्पष्ट कहा है कि, 'अनेक लक्षाधीश नवयुवक तथा बड़े-बड़े शक्तिशाली सरदार उसके प्रणय के प्यासे थे, किंतु वह जनसमुदाय के सामने आती और विद्युत की भांति चमककर उनके सामने से लोप हो जाती थी।' [22]

चित्रलेखा चंचलता के कारण कुमारगिरि की ओर आकर्षित होकर बीजगुप्त को छोड़कर कुमारगिरि के यहाँ कुटी में रहने जाती है। उपन्यास में योगी के रूप में एक इंद्रियजित, प्रतापी, आत्मिक बल और अलौकिक शक्ति से युक्त, परम तेजस्वी योगी के रूप में सामने आया है। शुरू में यह पात्र इंद्रियजित प्रतापी लगता है। लेकिन फिर अंत में वह अधोगति को जाता है। प्रारंभ का श्रद्धेय चरित्र धीरे-धीरे घृण्य बनता जाता है। चित्रलेखा के आश्रम में आने से उसके रूप, ज्ञान और वाक्पटुता का कुछ ऐसा प्रभाव उसपर होता है कि सारा योग सारी साधना एकबारगी हिल-सी जाती है। यहाँ से उसे अपने संयम पर वर्ग की जगह अविश्वास हो उठता है। चित्रलेखा अपने नर्तकी, सुंदर, कामपुत्तलिका, तर्कशीला, विदुषी रूपों में उसके मन-मस्तिष्क को उद्वेलित कर देती है। सम्राट के राजदरबार में चित्रलेखा से अपमान का घूँट कुमारगिरि न पी सका। चित्रलेखा उसके जीवन में आ जाने के बाद उसमें झूठ, दंभ, पाखंड, काम, विद्वेष, छल जैसी दुर्बलताओं के दर्शन उसके चरित्र में देखने को मिलते हैं। वह बीजगुप्त के बारे में किसीसे भी कुछ बोलता है तो उसके कथनों में ईर्ष्या और कुटिलता की गंध आती है। इसका प्रमाण इससे स्पष्ट होता है कि मृत्युंजय के घर पर यशोधरा के बीजगुप्त के साथ विवाह का समर्थन करने के पीछे, उसकी स्वार्थसनी दुर्भावना कार्यरत है। [23]

नारी के प्रेम-प्रदर्शन में भी चित्रलेखा ने व्यक्तिगत चेतना अभिव्यक्त की है। इसे लेखक पर पड़ा हुआ पाश्चात्य समाज-जीवन का प्रभाव ही मानना होगा। चित्रलेखा बीजगुप्त के भावी कल्याण के लिए गुरु-दीक्षा लेने योगी कुमारगिरि के पास गई थी। बीजगुप्त उसे इस कार्य से रोकने आया, तब चित्रलेखा ने बीजगुप्त से कहा, 'मैं तुम से सदा प्रेम करती रहूँगी।' [24] बीजगुप्त के चले जाने के पश्चात योगी कुमारगिरि ने चित्रलेखा के प्रेम-प्रदर्शन पर साश्चर्य पूछा, 'क्या तुम्हारा दो व्यक्तियों से एक साथ प्रेम करना संभव है?' तब वह प्रगतिशील समानाधिकार-प्रिय नारी की तरह कह उठी, 'क्या आप समझते हैं कि यह असंभव है? गुरुदेव, पुरुष दो विवाह कर सकता है, और वह दोनों पत्नियों से प्रेम कर सकता है, फिर स्त्री क्यों ऐसा नहीं कर सकती। स्त्री अपने पति से उतना ही प्रेम कर सकती है जितना अपने पुत्र से। आत्मिक संबंध कई व्यक्तियों से एक साथ संभव है।' [25] परिवर्तित स्थिति में समानाधिकार-प्रिय एक नारी का समाज में दो पुरुषों से प्रेम करना यह नई चेतना की अभिव्यक्ति ही है अथवा इसे पुरुष-प्रधान समाज में नारी का समानता का दावा भी माना जा सकता है। उपन्यास के माध्यम से लेखक ने युगों से दबी हुई भारतीय नारी के प्रति लेखक ने अधिक समभाव-सहानुभूति दिखाई है।

काम और संयम के संघर्ष में योगी की लहूलुहान साधना में काम का विकृत और बीभत्स रूप उसके उस छलपूर्ण आचरण में देखा जा सकता है जब वह चित्रलेखा की बीजगुप्त और यशोधरा के विवाह की झूठी सूचना देते हुए उसके हृदय में प्रतिशोध की आग जलाकर अपनी वासना को शांत करता है। वह चेहरा जिसे प्रथम बार देखकर चित्रलेखा को लगा था, कि योगी से उसका जन्म जन्मांतर का संबंध है। रात के वासना के बाद, सुबह उठकर जाते समय योगी का सोता चेहरा उसे भयानक और घृणोत्पादक लगने लगा। [26]

उपन्यास में इन तीन मुख्य पात्रों के अतिरिक्त दो पात्र और हैं जो मुख्यांश को मूर्तरूप देने की दृष्टि से अपना महत्व रखते हैं। विरोधी प्रवृत्तियों द्वारा संघर्ष की पृष्ठभूमि निर्मित कराने तथा मुख्य तीन पात्रों की लक्ष्य प्राप्ति में उन्होंने लेखक को सहयोग दिया है। मृत्युंजय-यशोधरा पिता-पुत्री पात्र बीजगुप्त के चिंतन और मानसिक उथल-पुथल को सघन रूप से उभारने की दृष्टि से प्रयुक्त हुए हैं। मृत्युंजय कोई साधारण सामंत नहीं है। अपनी

पुत्री का विवाह वे विख्यात विलासी-भोगी बीजगुप्त के साथ करने में अपने को धन्य समझते हैं जब कि दूसरी ओर धनहीन श्वेतांक के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव उन्हें रुचता नहीं है। यशोधरा सौंदर्य की साकार प्रतिमा है। चित्रलेखा उसके सौंदर्य को देख विमुग्ध है। बीजगुप्त मानसिक उद्वेग के क्षणों में भी उसके रूप-सौंदर्य की प्रशंसा किए बिना नहीं रह पाता। श्वेतांक स्वामी के आकर्षण की बावत जानते हुए भी उसके रूप पर मुग्ध हो प्रेम-प्रदर्शित कर बैठता है। असाधारणता यशोधरा के चरित्र निर्माण के समय भी लेखक से विस्तृत नहीं हुई है। वह बीजगुप्त से प्रेम के स्थान पर श्रद्धा करने लगती है। श्वेतांक के प्रति अपने-अपने किसी प्रेम-भाव की अस्वीकृति के बावजूद उसकी परिणीता बन जाती है। रहस्यमयी दार्शनिकता का आवरण उसके व्यक्तित्व पर सदैव चढ़ा दीखता है। श्वेतांक और विशालदेव पात्र भी महत्वपूर्ण हैं। इस पूरे उपन्यास में घटनाओं और चरित्रों के प्रत्यक्ष-द्रष्टा के रूप में उन्हें मंच पर उतारा गया है। पाप-पुण्य के संबंध में उनका मत निर्णायक भूमिका अदा करता है। वे मुख्य पात्रों के साथ द्रष्टा, सहभोक्ता के रूप में जुड़े हैं। इन दोनों गुरुभाइयों में लक्ष्य एवं ज्ञान और उसके आधार की समानता होते हुए भी अन्य कई विभाजक रेखाएँ हैं। जातिगत वैभिन्य के अतिरिक्त कई अन्य बिंदुओं से इन दोनों के अंतर को समझा जा सकता है। ब्रह्मचारी श्वेतांक संपर्क में आई दोनों नारियों के रूप-रस का लोभ संवरण नहीं कर पाया है। मनोभावों को नियंत्रित न रख पा सकने के कारण उसे अपने इस नवजाग्रत भाव के लिए अपमानित भी होना पड़ा है। यशोधरा के साथ विवाह संबंध स्थापित कर वह वैराग्य, ब्रह्मचर्य को छोड़ गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है।

'चित्रलेखा' में नारी की पीड़ा, शोषण, संघर्ष, विद्रोह, विवाद-मुक्त सह-जीवन आदि प्रश्नों को सार्वजनिक समस्या के रूप में न उठाकर 'वैयक्तिक' स्तर पर प्रस्तुत किया गया है। इन सभी समस्याओं का परिणाम नायिका चित्रलेखा पर पड़ा दिखाई देता है। इन सभी समस्याओं से चित्रलेखा को गुजरना पड़ा है। 'चित्रलेखा' उपन्यास की चित्रलेखा को प्रेम में एकनिष्ठता और एक से अधिक बार प्रेम कर पाने में व्यक्त उसकी समर्थता उसके चरित्र को ऊँचा उठाती है, मृत्युंजय द्वारा अपनी पुत्री के विवाह के संबंध में रखे गए प्रस्ताव पर वह जो कुछ भी अन्य संभ्रांत लोगों की उपस्थिति में कहता है, वह उसकी स्पष्टवादिता सादर और प्रेम के औदात्य को प्रकट करता है। [27] बीजगुप्त से श्वेतांक के विवाह के लिए किए गए उसके प्रयत्नों से उदारता और त्याग की वह भूमि दिखाई देती है, जहाँ पर बीजगुप्त मनुष्यत्व से देवत्व की मंजिल तक आ पहुँचा है। यह सब चित्रण इतना भावानुकुल और आदर्शमय रूप में हुआ है कि यह त्याग और बलिदान असाधारण कोटि का बन गया है। उपन्यास में सिर्फ कुमारगिरि और विशालदेव ही ऐसे है जो बीजगुप्त को देवता नहीं मानते उनके अलावा सभी पात्र बीजगुप्त को देवत्व प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि स्वयं सम्राट भी अन्य सामंतों और नर-नारियों की भीड़ के मध्य उसका हाथ अपने हाथ में लेकर घोषणा करते हैं - 'बीजगुप्त। तुम एक महान आत्मा हो, तुमने असंभव को संभव कर दिखाया। तुम मनुष्य नहीं हो तुम देवता हो। आज भारतवर्ष का सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य तुम्हारे समाने मस्तक नमाता है।' [28]

'चित्रलेखा' उपन्यास में अर्थ-निर्भर तथा सामाजिक वर्ग-भेद का उल्लेख है। 'चित्रलेखा' में धन-वैभव संपन्न वयोवृद्ध मृत्युजंय अपनी पुत्री का विवाह धन-हीन बीजगुप्त का सेवक श्वेतांक से नहीं करना चाहते। परंतु बीजगुप्त ने अपनी सारी संपत्ति और अपने सामंत पद श्वेतांक को देकर श्वेतांक को भी मृत्युंजय को समक्ष उन्हींके जैसा बना दिया। तभी वे यशोधरा का विवाह श्वेतांक से करने के लिए तैयार हो जाते थे। इससे

तत्कालीन सामाजिक स्थिति का बोध होता है कि किसप्रकार विवाह में व्यक्ति की पात्रता को नहीं देखा जाता था, तो उसकी संपत्ति को या प्रतिष्ठा, स्थान को देखा जाता था। इसी अर्थ पर आधारित सामाजिक स्थिति को ही समाज में माना जा रहा है। इसका यह एक बड़ा ही मार्मिक उदाहरण है। धन की तरह ही समाज में व्यक्ति के अलावा उसके स्तर को ज्यादा महत्व दिया जाता था। समाज में विधवा नारी को कोई स्थान नहीं था, तथा विधवा स्त्री आगे जाके नर्तकी बनती है या वेश्या बनती है। लेकिन इस उपन्यास में वर्माजी का प्रगतिवादी स्वर दिखाई देता है कि चित्रलेखा नर्तकी होकर भी वेश्या नहीं है। नर्तकी के रूप में उसे समाज में सम्मान का स्थान था। परंतु फिर भी पत्नी-पद के लिए मृत्युंजय की दृष्टि में अस्वीकार्य थी। इसलिए तो बीजगुप्त चित्रलेखा को अपनी पत्नी-सी बतलाते हुए भी उसे समाज में अपनी पत्नी का सम्मानीय स्थान नहीं दे सकता था और न तो दोनों से उत्पन्न संतानों को समाज में अपने सच्चे वंशज के रूप में स्थापित कर सकता था।

तत्कालीन समाज के समान आज भी समाज में सामाजिक मर्यादा और शादी-विवाह के मामलों में या विवाह संस्थाओं में ऐसी बातें देखने को मिलती हैं। चित्रलेखा में व्यक्तिगत चेतना अभिव्यक्त की है। चित्रलेखा बीजगुप्त के भावी कल्याण के लिए गुरु-दीक्षा लेने योगी कुमारगिरि के पास गई थी। बीजगुप्त चित्रलेखा से सच्चा प्यार करता था, इसलिए वह उसे इस कार्य से रोकने आया, तब चित्रलेखा ने उसे ही वापस भेज दिया। चित्रलेखा के सहवास में कुमारगिरि के चरित्र में बदलाव आता है। उसमें काम और संयम में संघर्ष निर्माण होता है। काम वासना के कारण उससे छलपूर्ण आचरण हो जाता है। इस प्रकार वर्माजी ने पाप और पुण्य की इस सामाजिक समस्या को दिखाने के लिए बीजगुप्त और कुमारगिरि पात्रों की निर्मिति की है। इन दोनों में किस प्रकार सौंदर्य आकर्षण रहा है, उनमें किस प्रकार बदलाव आते हैं इसका यथार्थ वर्णन उपन्यास में देखने को मिलता है।

तत्कालीन समाज में सामंत लोग कला-प्रेमी होते थे। आर्य मृत्युंजय ने एक दिन अपने यहाँ बीजगुप्त, चित्रलेखा और श्वेतांक को भोज के लिए आमंत्रित किया। इनके साथ कुमारगिरि और उनके शिष्य विशालदेव को भी आमंत्रित किया था। मृत्युंजय अपनी कन्या के लिए वर ढूँढ रहा था, और उन्हें बीजगुप्त योग्य वर प्रतीत हुआ। इसी उद्देश्य से उन्होंने भोज का आयोजन किया था। आमंत्रण पाकर सभी मृत्युंजय के घर पहुँचे। यशोधरा का शालीन सौंदर्य देखकर चित्रलेखा चकित रह गई। सभ्य समाज की स्त्रियों में चित्रलेखा का आना कुछ स्त्रियों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने चित्रलेखा पर ताने कसे। चित्रलेखा ने भी रोषपूर्वक उनको उत्तर दिया। बीजगुप्त के पूछने पर चित्रलेखा ने कहा कि स्त्रियों में हँसी-मजाक चल रहा था। लोगों के आग्रह पर बीजगुप्त ने सुंदर गाना गाया। यशोधरा ने भी गाया। सब के आग्रह पर चित्रलेखा ने नृत्य आरंभ किया। उसी समय कुमारगिरि शिष्य विशालदेव के साथ पधारे। मृत्युंजय कुमारगिरि का स्वागत करने चले गए। चित्रलेखा का नृत्य रुक गया। चित्रलेखा ने इसमें अपना अपमान माना। रूठकर वह जाना चाहती थी। उसे रोककर कुमारगिरि ने पूछा - 'नर्तकी! क्या मेरी उपस्थिति तुम्हें अरुचिकर लगी?' [29] इससे कला का अपमान व्यक्ति के अपमान से भी बुरा माना जाता है। इससे कला का महत्व स्पष्ट होता है। यशोधरा के अनुनय पर चित्रलेखा ने फिर नृत्य आरंभ किया। कुमारगिरि यशोधरा और चित्रलेखा के सौंदर्य की तुलना करने लगे - 'यशोधरा में शांति प्रधान है - चित्रलेखा में मादकता प्रधान है। चित्रलेखा जीवन की हलचल है, यशोधरा मृत्यु की शांति।'

चित्रलेखा नारी-प्रेम के भिन्न-भिन्न आदर्श प्रस्तुत करती है। अपने प्रेमी बीजगुप्त की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं शुभ के लिए चित्रलेखा संन्यास ग्रहण करना चाहती थी। इस उपन्यास में प्रेम और विवाह की समस्या भी दिखाई देती है। बीजगुप्त और चित्रलेखा एक दूसरे से बहुत प्रेम करते थे। इन दोनों में चित्रलेखा का प्रेम परिवर्तनशील रहा, परंतु बीजगुप्त अपने प्रेम में अंत तक दृढ़ रहा। कुमारगिरि और चित्रलेखा का आकर्षण का कारण प्रेम नहीं बल्कि एक दूसरे से वासना थी। बीजगुप्त से चित्रलेखा का विवाह न होते हुए भी दोनों एक दूसरे से पति-पत्नी-सा व्यवहार करते थे। विवाह-संस्था समाज-निर्मित है, जिसका वंश-वृद्धि के लिए समाज में मान्य होना अनिवार्य है। यह एक सामाजिक विषमता वर्माजी ने स्पष्ट की है। यह एक सत्य ही है। बीजगुप्त विवाह के बारे में अपना मत स्पष्ट करते हुए कहता है - 'स्त्री और पुरुष के चिर-स्थायी संबंध को ही विवाह कहते हैं।' [30] इस कथन पर कुमारगिरि हँसते हैं और शंका उपस्थित करते हैं। उनका मत है कि विवाह शब्द समाज द्वारा निर्मित है। इस शंका का उत्तर देते हुए बीजगुप्त बड़ी गंभीरता से मृत्युंजय से कहते हैं - 'आर्य। मैंने कहा था कि मेरा विवाह शास्त्रानुसार नहीं हुआ है, इसको स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा। लोक की दृष्टि में मैं अविवाहित हूँ, पर मैं वास्तव में विवाहित हूँ। चित्रलेखा मेरी पत्नी है। यद्यपि चित्रलेखा का पाणिग्रहण मैंने शास्त्रानुसार नहीं किया है, और समाज के नियमों के अनुसार कर भी नहीं सकता हूँ, फिर भी मेरा और चित्रलेखा का संबंध पति और पत्नी का-सा है। मैं प्रेम में विश्वास करता हूँ, और ऐसी स्थिति में मेरा अब विवाह करना असंभव है, क्योंकि मेरे प्रेम की अधिकारिणी कोई दूसरी स्त्री नहीं हो सकती।' [31] इतना बीजगुप्त चित्रलेखा से प्रेम करता था। एक सामंत और भोगी होकर भी उसकी इसी दृष्टि के कारण ही उपन्यास में अनेक पात्रों के मुख से उसके बारे में ईश्वर की संबोधना दी गई दिखाई देती है। पूरे उपन्यास में चित्रलेखा, श्वेतांक, मृत्युंजय, यशोधरा और सम्राट चंद्रगुप्त भी उसे ईश्वर कहकर पुकारते हैं।

चित्रलेखा कुमारगिरि के यहाँ से हारकर अपमानित होकर अपने भवन में लौटती है। ऐसी चित्रलेखा को भी वह क्षमा कर देता है। जब श्वेतांक यशोधरा से विवाह की इच्छा रखता है तब मृत्यंजय के विरोध के कारण वह अपनी सारी संपत्ति और सामंत पद श्वेतांक को दान करता है इस समय श्वेतांक उसे ईश्वर कहकर संबोधता है। जब श्वेतांक को बीजगुप्त सब दान करता है तभी श्वेतांक का विवाह यशोधरा से हो जाता है। उस समय भोजन के बाद सम्राट ने श्वेतांक को बधाई दी और उसको सामंत के नाम से संबोधित किया। इसके बाद उनकी दृष्टि बीजगुप्त पर पड़ी बीजगुप्त को बुलाकर सम्राट ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। इसके बाद वे खड़े हो गए। सम्राट के साथ अन्य अतिथि भी खड़े हो गए। भवन में सन्नाटा छा गया। सम्राट ने आरंभ किया - 'बीजगुप्त। तुम एक महान आत्मा हो। तुमने असंभव को संभव कर दिखाया। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम देवता हो। आज भारतवर्ष का सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य तुम्हारे सामने मस्तक नमाता है।' [32] इतना कहकर सम्राट चंद्रगुप्त ने बीजगुप्त के समाने सिर झुका दिया। जितने अतिथि वहाँ पर खड़े थे, सबके सिर एक साथ ही झुक गए, स्त्रियों के बीच से हिचकियों के साथ एक दबा रुदन फूट पड़ा। इतना सुनने के बाद नम्र बीजगुप्त ने सम्राट के सामने झूककर कहा - 'महाराज। मैं इस आदर के सर्वथा अयोग्य हूँ - आज मैं देश-पर्यटन के लिए जा रहा हूँ, एक भिखारी की भाँति - आप मुझे अपना आशीर्वाद दें और विदा दें।' [33]

उपन्यास के शुरू में बीजगुप्त का चित्रण एक भोग-विलासमय सामंत के रूप में जो मदिरा पान करता रहता था, इस प्रकार हुआ है। ऐसा चित्रण देखने से ऐसा लगता है कि संसार का पाप इसी बीजगुप्त के भवन

में है। मगर काल समय बदलने के बाद इनमें भी परिवर्तन आता गया और इनकी परिस्थिति भी बदलती गई। शुरू में ऐसा लगता था कि योगी कुमारगिरि साधना में विश्वास रखता है वह संसार से बहुत दूर रहता है। वह इंद्रियजित है। वह वासना को त्याज्य मानता है। उसके पास पुण्य भरा है ऐसा लगता था। मगर परिस्थिति बदलने के कारण चित्रलेखा के सौंदर्य के कारण उसमें वासना जागृत हो जाती है और उसकी इतने बरसों से की साधना नष्ट हो जाती है। और उसके हाथों बहुत बड़ा अपराध होता है अंत में वही पापी, घृणित हो जाता है।

बीजगुप्त अंत तक चित्रलेखा से ही प्रेम करता रहा। इसी प्रेम के कारण ही चित्रलेखा और बीजगुप्त अपने सर्वस्व त्याग करने पर भी अंत में एक हो सके थे।

उपन्यास में यह सारा वर्णन देखते समय यह भी समझ में आता है कि कालांतर में परिस्थिति-वश कुमारगिरि संयम-स्खलित होकर नर्तकी के प्रति आकर्षित हुआ, तब भोगी बीजगुप्त परिस्थियों के आवर्त में महान त्यागी बन गया। 'इन दोनों में कौन व्यक्ति पापी है?' पूछने पर दोनों शिष्यों ने अनुभवानुरूप विभिन्न मत प्रकट किए। श्वेतांक के मतानुसार बीजगुप्त देवता, त्यागमूर्ति एवं विशाल हृदय का व्यक्ति था, किंतु कुमारगिरि पशु, उत्तरदायित्वहीन एवं जीवन के नियमों के प्रतिकूल व्यवहार करनेवाला पापी था। इसके विपरीत विशालदेव का अनुभव था कि योगी कुमारगिरि अजित, ज्ञानी, इंद्रियजीत अनन्य साधक एवं प्रखर व्यक्तित्व का पुण्यात्मा था। परंतु बीजगुप्त वासना का दास, भोग-विलासी एवं पापमय संसार का एक पापी व्यक्ति था। ये सभी सुनने के बाद गुरु रत्नांबर अपना मत व्यक्त करते हैं, बिल्कुल वही मत लेखक वर्माजी का है, 'तुम दोनों विभिन्न परिस्थितियों में रहे और तुम दोनों की पाप की धारणाएँ भिन्न-भिन्न हो गई हैं। संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।'[34]

इस प्रकार वर्माजीने इस उपन्यास में तत्कालिन सामाजिक परिस्थिति का वर्णन यथार्थ किया हुआ दिखाई देता है।

निष्कर्ष

'चित्रलेखा' उपन्यास एक समस्याप्रधान उपन्यास है। इसमें पाप-पुण्य की समस्या को लेकर वर्णन किया है। यह समस्या सामाजिक समस्या है। इसका संबंध समाज से होता है। समाज, संसार में ही पाप और पुण्य ढूंढा जाता है। यह उपन्यास ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर लिखा है। मगर इसे ऐतिहासिक नहीं कह सकते। ऐतिहासिकता का आभास मात्र पैदा किया गया है। संसार में पाप क्या है, पुण्य क्या है यह जानने के लिए वर्माजी ने उपन्यास की निर्मिति की है।

वर्माजी ने इस पाप-पुण्य के बारे में सामाजिक समस्या को चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि इन तीन पात्रों की सहायता से उजागर करने की कोशिश की है। बीजगुप्त सामंत होकर भी इस पात्र के माध्यम से वर्माजी ने आदर्श प्रेम, सच्चा प्रेम कैसा होता है यह उजागर करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार उपन्यासकार ने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के द्वंद्व का चित्रण कर मध्यम मार्ग का वरण किया है। उसके अनुसार अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को शांत होने का उचित अवसर दिए बिना उनसे दूर भागने का प्रयत्न आत्म-प्रवंचना है। इसी संदर्भ में देखते हैं कि लेखक का भोगवादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है, किंतु लेखक ने भौतिक-सुखों के भरपूर भोग के साथ उसके उदात्तीकरण की आवश्यकता पर भी बल दिया है।

इस उपन्यास में सामाजिकता का वर्णन ज्यादा नहीं दिखाई देता। यह उपन्यास समस्यामूलक है। यह सामाजिक उपन्यास कम मगर दार्शनिक उपन्यास ज्यादा लगता है।

	संदर्भ		पृष्ठ
1.	प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना	डॉ. अमरसिंह ज. लोधा	2
2.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	12
3.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	12
4.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	19
5.	प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना	डॉ. अमरसिंह ज. लोधा	94
6.	भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना	डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल	41
7.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	177
8.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	147
9.	प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना	डॉ. अमरसिंह ज. लोधा	94
10.	हिंदी उपन्यास अंतरंग पहचान	डॉ. प्रेमकुमार	16
11.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	5
12.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	7
13.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	6
14.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	14
15.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	7
16.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	66
17.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	83
18.	चित्रलेखा - सृजनात्मक अनुकृति	वीणा अग्रवाल	87
19.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	134
20.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	9
21.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	134
22.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	11
23.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	81
24.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	105
25.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	106
26.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	157

27.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	77
28.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	171-172
29.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	73
30.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	77
31.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	77
32.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	171-172
33.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	172
34.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	177